वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है

पं. शिवशंकर शर्मा

प्रकाशक

आर्यसमाज

काशी

वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है।

लेखक—

त्रिदेव निर्णय, चतुर्दशभुवन, वैदिक विज्ञान
श्रीकृष्ण मीमांसा आदि पुस्तकों के रचयिता
ऋग्वेद भाष्यकार पं० शिवशंकर शर्मा
(काव्यतीर्थ)

प्रकाशक—

बलदेव आर्य
आर्यसमाज काशी

मूल्य =)॥

प्रकाशक का वक्तव्य।

आर्य जगत में पं० शिवशंकर शर्मा जी काव्यतीर्थ को कौन नहीं जानता। इनकी विद्वत्ता कितनी प्रगाढ़ थी, इनका अध्ययन कितना प्रगाढ़ था और आर्य सिद्धान्तों में कैसी एकान्त निष्ठा थी यह उनके बनाये त्रिदेव निर्णय, वैदिक विज्ञान, चतुर्दश-भुवन आदि ग्रन्थों से स्पष्टरूपेण मालूम हो रहा है। स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी ऋग्वेद के जिनमण्डलों का भाष्य अपने जीवन काल में समाप्त नहीं कर सके उन मण्डलों का भाष्य स्वामी जी की शैली पर इन्होंने बड़ी योग्यता से सम्पादन किया है। ये सब ग्रन्थ छप चुके हैं।

शर्मा जी के बहुत से ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित रूप से पड़े हैं। यह प्रस्तुत पुस्तिका उन्हीं में से एक है। मैं न तो पुस्तक प्रकाशक ही हूं न पुस्तक विक्रेता और न इस काम को करने का विचार है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि ऐसे ऐसे ग्रन्थ रत्न जो अब तक अप्रकाशित पड़े हैं उन्हें आर्यसंसार के सामने रक्खूं। यदि आपने इस पुस्तक का प्रचार कर मेरी सहायता की तो मैं उनकी दूसरी पुस्तक आप लोगों के कर कमलों में रखने में समर्थ होऊंगा।

उपर्युक्त "त्रैतवादनिर्णय" ग्रन्थ के सम्बन्ध में यदि कोई आर्य अथवा प्रकाशक महानुभाव शीघ्र छापना चाहें तो निम्न पते पर व्यवहार करें॥ छापे की अशुद्धियाँ पाठक स्वयं सुधार लेवें॥

बलदेव आर्य

आर्यसमाज काशी।

प्राक् कथन।

जून १९३३ में मैं आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय श्रीमान् पण्डित शिवशङ्कर जी काव्यतीर्थ के घर कमतौल जि० दरभंगा उनका हस्तलेख तथा खोज की सामग्री के अवलोकनार्थ गया था। उनके भ्राता श्री० पं० श्यामहित जी ने उनकी सब सामग्री बड़े प्रेम और उदारता से मेरे सामने रख दी। वे वेदभाष्य की सब सामग्री अजमेर पूर्व ही भेज चुके थे। बड़े दुःखसे कहना पड़ता, यह सामग्री इस समय, आर्यसमाज कलकत्ता के पास योंही पड़ी है। यदि उक्त समाज उसका प्रकाशन किसी योग्य विद्वान् के संरक्षण में करा दे तो वेद विषय में विचार करने वाले सज्जनों को बहुत कुछ लाभ होगा।

पण्डित जी के भ्राता जी ने श्री० माता यशोदा देवी (धर्मपत्नी श्री पं० शिवशंकर काव्यतीर्थ) की अनुमति से "ईश्वरीय ज्ञान वेद है" इस विषय का एक लघु निबन्ध मुझे दिया।

श्री पं० बलदेव जी कोषाध्यक्ष आर्यसमाज काशी ने जो बहुत ही सच्चे कार्यकर्ता हैं इस पुस्तक को प्रकाशित कराया है। प्रकाशित पुस्तकों का चतुर्थांश सहायता के विचार से पं० के घर कमतौल भेज दिया जायगा।

आशा है आर्य सज्जन महानुभाव इन पुस्तक को सर्व साधारण में विशेषतया विद्यार्थियों में बाँट कर वैदिक धर्म के प्रचार में सहायता देंगे।

उक्त पं० जी ने बहुत सरल शब्दों में वेद ही ईश्वरीय ज्ञान हो सकता है इस विषय को बहुत ही अच्छी तरह सिद्ध किया है।

इसके अतिरिक्त **त्रैतवाद निर्णय** नामक एक अमूल्य ग्रन्थ है जो फुल्सकेप साइज के ८०० पृष्ठ पर उक्त पंडित जी ने लिखा है। यह ग्रन्थ इस समय आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के पास पड़ा है। यह ग्रन्थ अर्द्धशताब्दी पर छपाया जा रहा था पर बहुत बिलम्ब में मिलने का निश्चय होने के कारण नहीं छप सका।

आर्यमहानुभाव प्रतीक्षा करें। यथा सम्भव शीघ्र ही यह ग्रन्थ भी आर्य जनता के समक्ष आ जायगा।

जो सज्जन इस विषय में विशेष जानना चाहें वे पं० बलदेवजी, आर्यसमाज काशी से पत्र व्यवहार करें।

वैदिक जिज्ञासु

राम लाल कपूर ट्रस्ट सोसाइटी

अनारकली-लाहौर,

ओ३म्

ईश्वरीय पुस्तक कौन है ?
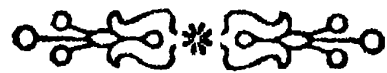
" ईश्वरीय ग्रन्थ कौन है इस पर विवेचना के पहिले आपसे संक्षिप्त निवेदन यह है कि मैं वेद, जेन्दावस्था, बायबल, त्रिपिटक, कुरान तथा पुराण इत्यादि धार्मिक ग्रन्थों को समान दृष्टि से देखता हूं। जैसे मैं ऋषियों को निज पूज्य पूर्वज समझता हूं वैसे ही जारोएष्टर, आदम, मूसा, सुलेमान, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद आदि को भी। संस्कृत, पहलवी, हिब्रू, ग्रीक, अरबिक, आदि पृथिवी पर की भाषाओं को मैं तुल्य समझता हूँ। पृथिवी पर के मनुष्य मात्र को भाई मानता हूँ। और पर्वतकृत अथवा समुद्रकृतादि अन्यान्य सीमा के कारण भेद नहीं स्वीकार करता। मैं इसको पूर्ण तरह से अनुभव करता हूं कि सब ही मनुष्य जातियां और प्राणी ईश्वर के पुत्र हैं और सबही ईश्वरीय विभूतियों के तुल्यधिकारी हैं। जो कुछ परस्पर विरोध या भेद होगया है वह अज्ञान कृत है। संभव है कि विद्या प्रचार से इस अविद्या का कभी विनाश होजायगा। हां, इतनी बात अवश्य है कि

इन्हीं ग्रन्थों के उपदेशानुसार मैं सत्य का जिज्ञासु हूं। इसलिये मेरे भाव या लेख में प्रमादवश यदि किसी प्रकार की त्रुटि आगई हो तो अवश्य आप क्षमा करेंगे।

ईश्वरीय ग्रन्थ कौन ?

मेरे विचार में वक्ष्यमाण लक्षणयुक्त ग्रन्थ ईश्वरीय कहलाने योग्य हो सकता है। लक्षण ये हैं:—

१—वह ग्रन्थ मानव-सृष्टि के साथ ही दिया गया हो।

२—जिस समय पृथिवी पर कोई विभिन्न भाषाएं उत्पन्न न हुई हों।

३—जिसमें ईश्वरके गुण, स्वभाव, सत्यता, न्याय परायणता-तथा दयालुता आदि का परस्पर विरोध रहित विवरण हो।

४—जिसमें ईर्ष्या, द्वेष, पक्षपात आदि का लेश भी न हो।

५—जिसमें मनुष्य की स्थिति अर्थात् आकृति आयु, जन्म, कर्म और मुक्ति प्रभृति का वर्णन हो।

६—जिसमें सृष्टि के अनादित्व, अनन्तत्व और वास्तविक स्वरूप का उल्लेख हो।

७—जिसमें जीव के पूर्व भाव, अविनश्वरता तथा कर्मानुसार निग्रहानुग्रह आदि का अनुशासन हो।

८—जिसमें मिथ्या माहात्म्य न हो।

९—जो ग्रन्थ लौकिक विज्ञान से विरुद्ध न हो।

१०—जिसमें ईश्वरीय कार्य्यों के ही उपलक्ष में उत्सव, पर्व आदि का विधान हो ॥

उपर्युक्त लक्षणों की सार्थकता और तद्युक्त ग्रन्थ की समालोचना होने से विद्वानों को प्रतीत होगा कि वास्तविक ईश्वर प्रेरित ग्रन्थ कौन है ?

मानव सृष्टि के साथ

१—वह ग्रन्थ मानव सृष्टि के साथ ही दिया गया हो।

यह प्रथम लक्षण है। कई एक भाई इस लक्षण की आवश्यकता न समझते हों तो उनसे मैं पूछता हूं कि उतने दिन वे मनुष्य सन्तान कर्तव्याकर्तव्य के बोध से बिमुख रह पाप-पुण्य के भागी होते थे या नहीं। यदि कहें कि नही, तो वे मनुष्य कदापि नही कहला सकते। क्योंकि उनमें विवाह, खाद्याखाद्य और दण्डादण्ड आदि का कुछ भी विचार न होता होगा। तथा आद्य शिक्षा के विना उनमें मानव भाषा भी न आई होगी अतः वे पशु ही माने जा सकते हैं। इसलिये ईश्वरीय ग्रन्थ का मनुष्यसृष्टि के साथ २ आविर्भाव मानना उचित है ॥

बायबल, कुरान भी कहते हैं कि आदम और हौव्वा को उत्पन्न कर और अदन में रख कर्तव्याकर्तव्य का परमात्मा

ने उपदेश दिया था। उसका एक उदाहरण यह है कि एक विशेष वृक्ष के फलों को खाने से वे दोनों रोके गए थे। तथापि इतिहास से मालूम है कि ४००० चार सहस्त्र वर्ष के अभ्यन्तर में बायबल बन कर समाप्त हुआ है और कुरान का आविर्भाव भी१३०० तेरह सौ अथवा तेरह सौ से कुछ अधिक काल से है। इसी प्रकार जेन्दावस्था आदि का भी वर्णन है। आद्य सृष्टि की यदि कोई पुस्तक कही जा सकती है तो वह केवल वेद ही है। वर्तमान कालिक विद्वान् भी वेद को ही सब से प्राचीनतम ग्रंथ निश्चित करते हैं। अतः इस लक्षण से वेद ही ईश्वर प्रेरित ग्रन्थ कहा जा सकता है।"

भाषा का सम्बन्ध

२—जिस समय पृथिवी पर कोई विभिन्न भाषाएँ उत्पन्न न हुई हों।

यह द्वितीय लक्षण है। सब धर्म ग्रन्थों के अनुसार यह सिद्ध है कि आदि सृष्टि में बड़े प्रेम से ईश्वर ने मानव जाति को प्रकट किया। और इसमें इतनी उन्नति के कारणों मे से एक कारण विस्पष्ट भाषा है। अब प्रश्न होता है कि क्या ईश्वरीय शिक्षा के बिना ही इस जाति में व्यक्त भाषा आई है या शिक्षा के कारण ! इस प्रश्न के उत्तर में धर्म ग्रन्थों की सम्मति यही प्रतीत होती है कि मानवजाति को प्रकट

करके ईश्वर ने उसे शिक्षा दी है और विधि निषेधों के बहुत से उपदेश भी दिए हैं ॥

अब जिज्ञासा करनी चाहिए कि वे उपदेशमय ग्रन्थ लुप्त होगये या कहीं सुरक्षित हैं। बायबल आदि वे ग्रन्थ नहीं हो सकते क्योंकि इतिहास से मालूम है कि इन बायबल आदिकों के आविर्भाव के काल में विविध भाषाएं और सम्प्रदाय जगत् में राज्य कर रहे थे। तब वे कैसे ईश्वर प्रेरित कहलाने योग्य हो सकते। अब वेद की ओर यदि देखते हैं तो परीक्षा और समालोचना से प्रतीत होता है कि वेद के समय न तो कोई भाषा ही या धर्म ही पृथिवी पर विद्यमान थे। अतः वेद ही ईश्वरीय ग्रन्थ कहलाने योग्य है ॥

और भी जब मानव जाति निज उद्योग से व्यक्त भाषा बोलने वाली होगई हो और स्वानुभव से यत्किञ्चित् धर्म की और अन्यान्य कर्तव्याकर्तव्य की व्यवस्था भी करली हो तो उस अवस्था में विधिनिषेधमय ग्रन्थ देने से भी ईश्वर अधिक लाभ मनुष्य वर्ग में नहीं पहुंचा सकता। वे मनुष्य उस पिता से कह सकते हैं कि इतने वर्ष उस विपत्ति में हमको त्याग अब आप हमारे अभ्युदय के समय में साहाय्य देने को आए हैं अतः आपको हम कैसे मानें और पूर्व व्यवस्था को कैसे छोड़ें ॥

और भी उस समय जितनी भाषाएं पृथिवी पर विद्यमान होंगी उतनी भाषाओं में ईश्वरको उपदेश करना उचित होगा

अन्यथा वह पक्षपाती समझा जायगा। अतः इस लक्षण से भी वेद ही ईश्वरीय है यह सिद्ध होता है॥

ईश्वर के गुण स्वभाव

३—जिसमें ईश्वर के गुण, स्वभाव, सत्यता, न्यायपरायणता तथा दयालुता आदि का परस्पर विरोध रहित विवरण हो।

इस लक्षण का भी सर्वत्र अभाव है। इस पर विचार करते हुए मुझे अतिशय शोक होता है कि वास्तव में लोगों ने धर्म के नाम पर कैसी २ अविद्याओं और अन्यायों का अटूट जाल फैलाया है। ईश्वर के पवित्र गुणों का वर्णन कहां है? सब सम्प्रदायी कहते हैं कि ईश्वर मूर्तिमान् मनुष्याकार है। इसके निकट दूत, वाहन, धन, भोगोपकरण, स्त्री, पुत्र सभा इत्यादिक हैं। वह किन्हीं धर्मियों का पक्ष लेकर किन्हीं को अपराध के विना ही मार देता है। किसी पर निष्कारण अनुग्रह कर उसके समीप दूत द्वारा निज संदेश भेजता है और उसको धर्म के लिये युद्ध की भी आज्ञा देता है। किन्हीं विशेष जातियों पर ही उसकी कृपा होती है। वह एक स्थल में बैठकर न्याय करता है। वह सोता, जागता, भोग विलास करता इत्यादि। जब कोई सिद्ध पुरुष चाहता तब उसका दर्शन और उससे कर्तव्याकर्तव्य की शिक्षाएं भी ले आता है। उसको प्रसन्न रखने का यह सरल उपाय है कि उसको

अच्छी २ चीजें भोग के लिये और पहनने के लिये देवे इत्यादि। अर्थात् अपने २ स्वभाव के तुल्य ही परमात्मा को भी गढ़ते हैं। जैसा ईश्वर है वैसा कहीं भी विवरण नहीं। प्रथम सब सम्प्रदायी ईश्वर को साकार निरूपण करते हैं सो हो नहीं सकता। इस अनन्त संसार का शासक मनुष्याकृति नहीं हो सकता। इसीलिये वेद में कहा गया है कि—

" अकायम् "

वह शरीर रहित है।

"न तस्य प्रतिमा अस्ति "

न उसकी कोई मूर्ति है और न उसको कोई उपमा वा सादृश्य है।

" सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च "

वह सबका स्रष्टा तथा स्थावर और जंगम दोनों का अन्तरात्मा है। वही प्राण का प्राण है वह सर्व व्यापक कहा गया है यथा—

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं
धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम्।

इत्यादि यदि वह शरीरधारी है तो वह कमसे कम दो पदार्थों से बना है यह सिद्ध होगा। एक उसका शरीर और दूसरा आत्मा। शरीर उसका अवश्य प्राकृत होगा और प्राकृत

होने से वह अवश्य विनश्वर भी होगा। अतः वह कभी मरता और कभी जीता होगा और भी वह स्थूल शरीर धारी होकर सब में व्यापक नहीं हो सकता। इत्यादि २ अनेक दोषों के कारण वेद भगवान् उसको अकाय, अमूर्त्त, व्यापी अप्रतिम आदि शब्दों से पुकारते हैं। परन्तु अन्यान्य सबही धर्मग्रन्थ उसको साकार ही मानते हैं अतः वे ग्रन्थ ईश्वर प्रेरित नहीं हो सकते॥

यदि मैं सब विचारों को त्याग केवल—

"ईश्वर एक ही है"

इस पर दृष्टि डालता हूँ तो इसमें भी सर्व धर्मग्रन्थ बालोन्मत्तवत् वर्णन करते हैं। प्रथम ईश्वर एक है इसका आशय समझना चाहिये। वह अपने कार्य्यमें किसी अन्य से सहायता न लेता हो तब ही उसकी एकता बन सकती है। यदि उसके निकट दूत हैं और अपने कार्य्य के लिये जहां तहां उन्हें भेजता है तो वह एक नहीं है यह सिद्ध हुवा क्योंकि वह अकेला ही अपने कार्य्य करने में असमर्थ है। यों तो प्रत्येक व्यक्ति एक ही है। जैसे शासक राजा एकही है, परन्तु अपने समस्त कार्य्यों को वह अकेला संभाल नहीं सकता अतः सहस्रशः कर्मचारियों को राज्य में नियुक्त करता है। यदि ईश्वर भी एतत्सदृश ही है तो वह एक ही कैसा। कुरान, बायबल आदिकों में विस्पष्ट वर्णन आता है कि ईश्वर

के निकट दूत हैं। तथाच पुराणों में तो एकेश्वरवाद की गन्ध भी नहीं है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, काली आदि और उनके परिवार आदि कितने ब्रह्म हैं उसका पता ही नहीं॥

वेदों में ऐसी व्यवस्था नहीं—

"द्यावाभूमि जनयन देव एकः"

इत्यादि मन्त्रों में उसको एक कहते हुए कहीं भी उसके दूतों, स्त्रियों, और मन्त्री आदिकों का निरूपण नहीं। उसके न्याय का भी वर्णन यथार्थ रूप से कहीं भी नहीं। कुरान का खुदा केवल अरब निवासियों के लिये, बायबल का जिहोवा केवल यहूदियों के लिये। इसी प्रकार पुराणों का ईश्वर ब्राह्मणों के लिये ही है। यह कौनसा न्याय है। इस पर विशेष न लिख कर विवेकी पुरुष स्वयं विचार करें॥

सर्वज्ञता का भी वर्णन कहीं भी नहीं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश को अपनी सृष्टि का भी पता नहीं। पृथिवी और चन्द्र सूर्यादिक कौन हैं और उनकी आकृति, गति, विस्तार आदि कितने हैं वे सब उनको किञ्चिन्मात्र भी विदित नहीं। चन्द्र ग्रहण कैसे होता है यह न तो त्रिदेवों को, न राम कृष्ण को और न खुदा और जिहोवा को ही ज्ञात था तब उन्हें हम पण्डित की भी पदवी नहीं दे सकते सर्वज्ञता की बात ही क्या?

बायबल में यह प्रसंग आता है कि ईश्वर ने आदम और हव्वा को बना और एक बाग में रख कर कहा कि देखो इस एक वृक्ष के फल न खाकर और सब का फल खाओ। उन दोनों ने उस निषिद्ध वृक्ष के भी फल खाए। ईश्वर उन पर इसलिये अत्यन्त क्रुद्ध हुए, शाप दिए और अन्त में उस बाग से निकाल बाहर किया। क्या यही ईश्वर की सर्वज्ञता है। उसको यह भविष्यत् बोध नही हुआ कि हमारे निषेध करने पर भी वे दोनों न मानेंगे। एक बालक के निकट उत्त-मोत्तम फल देकर कहा जाय कि ये फल मत खा। क्या वह शिशु कभी इसको मान सकता है। उसके निकट वे दोनों शिशु ही थे, तथापि उनको दण्ड दिया जाना है यह कहां का न्याय और सर्वज्ञता है॥

पुनः जल प्रलय की भी यही दशा है उत्तम विज्ञानी कारीगर अपनी बनाई हुई चीज की स्थिति अच्छे प्रकार जानता। घड़ी बनाने वाले कह देते हैं कि इतने दिन यदि इसमें कुंजी न दी जायगी तो कोई क्षति न होगी। और यह घड़ी करीब इतने वर्ष इन उपायों से ठहर सकती है। किन्तु सर्वज्ञ ईश्वर यह नही जानता है कि मेरी बनाई हुई चीजें इतने वर्षों के पश्चात् बिगड़ जायेंगी। मनुष्य ईश्वर के उपदेश से विरुद्ध चलने लगे। ईश्वर क्रोध कर जल प्रलय ले आया। भला, मनुष्य पापी हुए थे, अन्यान्य जीवों का

क्या अपराध था जो उस जल प्रलय से सबका नाश कर दिया गया और यह कौनसी सर्वज्ञता है ॥

"ईश्वर पवित्र है" ऐसा वर्णन सब सम्प्रदायी करते हैं। किन्तु कार्य्य से यह गुण प्रकाशित नहीं होता। ईश्वर होकर वृन्दा के पातिव्रत्य भग्न करता है। एक विश्वासी भक्त से शपथ उतार देने के लिये कहता है और मनुष्यवत् पुत्र पैदा करता है इसके अतिरिक्त जिहोवा ने मिश्रदेश की सारी नदियां मूसा के द्वारा रुधिर कर डालीं। सारी भूमि को मेड़कों से भर दिया। उस देश की धूलों से चीलर ही चीलर बना डाले। आग बरसाई सब लोगों के देह पर फफोले उत्पन्न हो गए। सब के ज्येष्ठ पुत्र मार दिए गये इत्यादि अनेक लीलाएँ ईश्वर ने मिश्र देश में इसलिये रची थीं कि वहां के लोग मूसा को स्वर्गीय दूत और भविष्यद्-वक्ता मानें। इन बातों से अन्याय, पक्षपात और अशुद्धता प्रतीत होती है। वेद में ऐसी ऐसी एक भी बात नहीं। मैं इन बातों को कहां तक वर्णन करूँ। समय स्वल्प है और अत्या-वश्यक अन्यान्य विषयों पर चर्चा करनी है।"

४—जिसमें ईर्ष्या, राग, द्वेष और पक्षपात आदि की बात न हो।

वेदों में कहीं भी वर्णन नहीं आता है कि अमुक जाति अथवा अमुक व्यक्ति के ऊपर परमात्मा का निष्कारण, दया

वा कोप राग वा द्वेष है। अमुक आदमी ईश्वर की ओर से भेजा जाता है उसकी सारी बातें सब कोई मान लेवें। कुरानी अल्लाह के दयापात्र, अरब निवासी। जिहोवा की कृपा यहूदियों के ऊपर है। पुराण के ईश्वर ने ब्राह्मण जाति को छोड़ सबको निकृष्ट ही बनाया है। शूद्र तो श्मशान तुल्य है। ब्राह्मण के भोजनमात्र से ईश्वर तृप्त हो जाता है। मुहम्मद साहिब ईश्वर के परम प्रिय बन्दा हैं यद्यपि उन्होंने स्वयं एक अक्षर भी नहीं पढ़ा तथापि वे सब कुछ जानते थे। वे मानव रूप में अल्लाह के निकट पहुँचाए गये। उनके ऊपर उसकी इतनी दया थी कि शपथ उतारने के लिये भी मुहम्मद साहब को आज्ञा दी। इसी प्रकार अन्यान्य अनेक बातें अनुचित कही गई हैं॥

वेदों में जो आर्य्य और दस्यु की बात आती है वह किसी विशेष जाति का विवरण नहीं। दस्यु यह नाम ही चोर, डाकू, लंपट, बदमाश, नास्तिक और महाघोर पापिष्ठ का है जिनमें धर्म का किञ्चिन्मात्र भी लेश नहीं। इसी कारण उसके लिये अव्रत, अयज्वा ब्रह्मद्विट्, क्रव्याद्, दस्यु और दास आदि शब्द आते हैं। दस्यु यह "उपक्षयार्थक दस" धातु से बनता है अर्थात् जो अपनी ही समीपी जाति के क्षय करने में लगा रहे। मनुष्यों के धनों और प्राणों दोनों को हरण करे, वह दस्यु, इसी धातु से दास शब्द भी बनता है एक मन्त्र

में वर्णन यों आया है कि वे किसी ईश्वर वा देव को नहीं मानते और न दानादि शुभ कर्म ही करते हैं। वे अपने मुख को ही हवन कुण्ड समझते हैं यथा—

स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत।

ऋ० १—५१—५

(ये) जो (स्वधाभिः) विविध अन्नों से (अधि+शुप्तौ) मुख में ही (अजुह्वत) हवन करते हैं। अन्य मन्त्र में लिखा है कि वे नानारूप धारण कर नाना कुकर्म करते हैं।

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र॥

ऋ० ७।१०४।२२

(उलूकयातुम्) जो उलूक के रूप बना कर आक्रमण करते हैं (शुशुलूकजातुम्) जो छोटे उलूक के समान चलता है (श्वयातुम्) कुत्ते के समान रूप बनाने वाले इत्यादि प्रकारके दुष्ट मनुष्यों को हे राजन्! समाज से दूरकर। इत्यादि

इनको राक्षस इस लिये कहते थे कि इनसे रक्षा अति कठिनता से होती थी। कच्चे मांस के खाने के कारण वे क्रव्याद् कहाते थे। पिशाच भी इसी कारण कहाते थे इसी प्रकार के अन्यान्य नाम हैं। एक नाम कीकट है (किं क्रियाभिः) जो कहा करते हैं कि शुभ कर्म करने से क्या होता है, इससे विपरीत को आर्य्य कहते हैं। जिसमें सर्व श्रेष्ठ गुण हों।

धीरे २ आर्य्यों का एक दल बन गया वेद में किसी देश, जाति, व्यक्ति का वर्णन नहीं है तब पक्षपातादि दोष कैसे आ सकता है ।

मनुष्य की स्थिति ।

५—जिसमें मनुष्य की स्थिति अर्थात् आकृति आयु जन्म, कर्म और मुक्ति प्रभृति का अच्छे प्रकार विवरण हो ।

इस लक्षण का भी सर्वत्र अभाव ही पाते हैं क्योंकि कोई कहते हैं कि पहले आदमी लम्बाई में उनचास हाथों के होते थे उनकी आयु भी दो चार हजार वर्षों की होती थी । जन्म कर्मों का भी कोई ठिकाना नहीं । क्योंकि कोई आदमी सूर्य्य से, कोई अग्नि से, कोई घड़े से, कोई कान से, कोई नदी और समुद्र से, कोई हाथ से ही उत्पन्न हुए । कोई जन्मलेते ही सूर्य्य को निगल गए । कोई समुद्र ही पीगये । कोई वशिष्ठ आदि इतने समर्थ हुए कि जिनकी गौ से मनुष्य की विविध जातियां उत्पन्न हुईं इत्यादि मनुष्य के सम्बन्ध में नाना कल्पनाएं ईश्वरीय पुस्तकाभासों में देखते हैं ।

परन्तु आश्चर्य्य यह है कि वेद में ऐसी एक बात भी नहीं । जो आकृति मनुष्य की आज है पहले भी करीब वही थी । हां यह सत्य है कि सभ्यता असभ्यता के कारण मनुष्य

की आकृति में कुछ भेद होता रहता है। जैसे भारत के कोल भील हैं।

वेद में मनुष्य की आयु माध्यमिक संख्या सौ वर्ष है। क्वचित् ३०० सौ वर्ष की आयु के लिये प्रार्थना है किन्तु वैसा एकही मन्त्र है "त्र्यायुषं जमदग्नेः" इत्यादि। अनेक मन्त्रों में शतवर्ष की ही आयु का वर्णन आता है यथा—

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् पश्येम शरदः
शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतम्।

इत्यादि। पुनः—

दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम्।
ऋ० १०। ८५। ३९।

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा
जरसं तनूनाम्। पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति
मानो मध्या रीरिषताऽऽयुर्गन्तोः। य०२५।२२।

जैसे आजकल भी कोई पौत्र के जन्म तक जीते हैं वैसे ही यहां प्रार्थना है।

दीर्घतमा मामते यो जुजुर्वान् दशमे युगे।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः।
ऋ० १। १५८। ६

मनुष्य की स्थिति

यहाँ दशम युग शब्द देख कोई २ कहते हैं कि दीर्घतमा दशमयुग तक जीते रहे। परन्तु वेद का तात्पर्य वे नहीं समझते हैं। जब सैकड़ों मन्त्रों में शतवर्ष आयु की ही चर्चा है तब एक मन्त्र में इसके विरुद्ध कैसे होगी और भी चारों वेदों में सत्ययुग आदि का कहीं भी वर्णन नहीं। चारयुगों की कल्पना बहुत ही आधुनिक और अवैदिक है। यहां युग नाम मास का है। क्योंकि कृष्ण और शुक्ल दो पक्षों के योग से मास बनता है। दशम युग में मामतेय=ममता युक्त जीव उत्पन्न होता है यह इसका अर्थ है जैसा कि वेद में आता है।

दशमासाञ्छशयानः कुमारो अधिमातरि।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि।

ऋ० ५-७८-८

आजकल भी सुपुष्ट बालक दशमास में उत्पन्न होता है। सम्पूर्ण वेद में दशम मास ही मनुष्योत्पत्ति की अवधि मानी गई है इसके विरुद्ध कहीं वर्णन नहीं है। परन्तु इसके विरुद्ध अन्यान्य ग्रन्थ में लेख आता है। मनुष्य के जन्म के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जैसे अन्यान्य जीवों का आविर्भाव इस पृथिवी पर हुआ उसी नियम के अनुसार मनुष्य सृष्टि भी हुई। मनुष्य सृष्टि का कोई विलक्षण वर्णन वेदमें नहीं। यदि मनुष्य मिट्टी से बनाया गया तो अन्यान्य

जीव पशु आदि किससे बनाए गए । क्या प्रत्येक जीव को रचने के लिये भिन्न २ सामग्री थी। सो हो नहीं सकता। पुनः मिट्टी से मनुष्य बनाया गया इसका क्या आशय है क्या आत्मा भी मिट्टी से बनाया गया। यदि ऐसा ही है तो मरण के साथ इसकी समाप्ति हो जायगी । पुनः किसको दोजख और बिहिश्त। इस हेतु वेद में मनुष्य शरीर की रचना का कोई विशेष वर्णन नहीं और आजकल वैज्ञानिक सिद्धान्त से भी यही सिद्ध होता है। जीव का अनादित्व आगे मैं सिद्ध करूँगा।

मुक्ति के विषय में इतना वक्तव्य है कि जब तक प्रकृति और ईश्वर का पूर्णज्ञान नहीं होता और ईश्वर की आज्ञा पर नहीं चलता तबतक वह दुःख से नहीं छूटता। अज्ञान ही दुःख का मूल है अतः वेद में कहा गया है कि—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णम्।

मनुष्य के कर्मों का वर्णन वेद के आदि से अन्त तक है। इस पर हम विशेष लिखना नहीं चाहते। इतना कहकर समाप्त करते हैं कि वेद के स्थान २ में यह वर्णन आता है कि मनुष्य अपनी बुद्धि से सत्यता की गवेषणा (खोज) करे। मनुष्य कभी अनन्त सृष्टि का सर्वज्ञ नहीं हो सकता।

"मनुष्य की सर्वज्ञता"

शोक की बात है कि प्रत्येक सम्प्रदायी ग्रन्थ में आचार्यों

को सर्वज्ञ कहा है किन्तु जब उनके ग्रन्थों की परीक्षा करते हैं तो वे आजकल की विद्या के सामने एक बालक ही प्रतीत होते हैं जिस पृथिवी पर वे निवास करते थे उसकी दशा जिन्हें नहीं मालूम था। इतने पर भी उनके शिष्य उनको सर्वज्ञ बतलाते हैं तो कहा करें। मनुष्य की जिह्वा को कोई रोक नहीं सकता।

वेद में कहीं भी वर्णन नहीं आया कि अमुक ऋषि सर्वज्ञ हुए हैं इसलिये वेद की सत्यता जितनी ही परीक्षित होती है उतनी अधिक २ मालूम होती है। अतः वेद में सत्यता की ओर जाने के लिये प्रार्थना आती है।

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि इत्यादि।

६—जिसमें सृष्टि के अनादित्व अनन्तत्व और वास्तविक स्वरूप का उल्लेख हो।

यह लक्षण भी किसी अन्य धर्म पुस्तक में नहीं घटता। सत्पदार्थवादी कोई भी सम्प्रदाय नहीं। यदि ईश्वर के साथ २ अनादि कोई पदार्थ नहीं था तो इस जगत् को किससे बनया। यदि कहा जाय कि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। तत्काल ही उत्पन्न करा लिया। तो मैं पूछता हूँ कि ईश्वर सृष्टि के पहले क्या करता था और कहां था किसका स्वामी और किसका अधिपति था? वस्तु रचने के पहले सृष्टि का ज्ञान भी उसको न होगा। क्योंकि उसने पहले सृष्टि देखी नहीं। किन्तु परीक्षा से प्रतीत होता है कि किसी वस्तु का

विनाश नहीं होता किन्तु केवल रूपान्तर मात्र होता है। इससे पदार्थ का अनादित्व सिद्ध है। ईश्वर ने कहा कि सृष्टि हो जाय और सृष्टि हो गई यह कैसी आश्चर्य की बात है। कोई कहते हैं कि पानी के ऊपर बैठे हुए ब्रह्मा ने सारी सृष्टि रची इत्यादि अनेक मिथ्या कल्पनायें हैं॥

वेद में विस्पष्ट रूप से कहा गया है कि पहले प्रकृति थी। जीव भी पहले से ही थे। ईश्वर इनका निमित्त कारण है। अभाव से भाव नहीं हुआ किन्तु भाव का विकाश हुआ है। वेद के दो मन्त्रों में सृष्टि किस प्रकार बनी इस विषय के प्रश्न आते हैं।

यथा—

किं स्विदासीदधिष्ठान मारम्भणं कतमत् स्वित् कथासीत्। यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा विद्यामौर्णोत् महिना विश्वचक्षाः। यजु० १७।१८

जब कुम्भकार घटादि वस्तु बनाना चाहता है तब मृत्तिका आदि प्रयोजनीय वस्तुओं को एकत्रित कर किसी एक स्थान में बैठ घटादि निर्माण करता है। यह लोक में देखते हैं। यह लौकिक न्याय वेद में भी प्रवृत्त होना चाहिये। अतः प्रथम इस प्रकार प्रश्न करते हैं। यथा (अधिष्ठानम्) इस जगत् को बनाते हुए ईश्वर का निवास स्थान (किंस्वित्+आसीत्) क्या था और (आरम्भणम्) आरम्भ करने को

सामग्री (कतमत्+स्वित्) कौनसी थी (यतः) जिस काल में (भूमिम्+द्याम्+च) पृथिवी और द्युलोक को (जनयन्+विश्वकर्मा) उत्पन्न करता हुआ विश्वकर्त्ता (विश्वचक्षुः) और सर्वद्रष्टा परमात्मा (महिना) अपने सामर्थ्य से (वि+और्णोत्) समस्त जगत् को ढांक लेता है ॥

किꣳ स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावा पृथिवी निष्टतक्षुः। मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ॥ य० १७।२० ॥

(किम्+स्वित्+वनम्) वह वन कौन था (कः+उ सः वृक्षः+आस) और वह वृक्ष कौन था (यतः द्यावापृथिवी) जिस वन और वृक्ष से पृथिवी से लेकर द्युलोक (निष्टतक्षुः) अलंकृत किया गया है (मनीषिणः) हे विद्वानो (मनसा+इत्+तत्) मन से यह भी (पृच्छत) उससे पूछो कि (भुवनानि+धारयन्) भुवनों को धारण करता हुआ (यद्+अधि+अतिष्ठत्) वह जिस स्थान में खड़ा रहता है वह कौनसा है।

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् । संबाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥ यजु० १७।१९

(विश्वतश्चक्षुः) जो सब देखता और (विश्वतोमुखः) जिसका मुख सर्वत्र है (विश्वतोबाहुः) जिसका बाहु और (विश्वतस्पात्) पैर सर्वत्र हैं वह (एकः+देवः) एक ही देव (द्यावाभूमी+जनयन्) सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करता हुआ (बाहुभ्याम्) मानो अपने बाहु से (पतत्रैः) परमाणुओं के साथ (संधमति) गति देता है। अर्थात् सर्व परमाणुओं में गति उत्पन्न करता है ॥

पतत्र नाम नित्य पदार्थ का है वे पहिले से ही थे उनसे ही परमात्मा ने यह सृष्टि रची इत्यादि इसका आशय है। इसी प्रकार अनन्त सूर्य्य, अनन्त ताराएं और अनन्त पृथिवी आदिक लोक लोकान्तर हैं इत्यादि वर्णन वेदों में आता है अतः इस लक्षण के अनुसार भी वेद ही ईश्वरीय कहे जा सकते हैं ॥

७ जिसमें जीव के पूर्वभाव, अविनश्वरता तथा कर्मानुसार निग्रहानुग्रह आदि का अनुशासन हो।

जीव अनादि हैं इसके वर्णन से वेद भरे हुए हैं। "इन्द्र" यह नाम जीव का है। यहां मैं इसका केवल एक ही प्रमाण देता हूँ। आंख, कान, नाक इत्यादिकों का नाम इन्द्रिय इस लिये है कि इन्द्र जो आत्मा उसके ये दर्शक हैं। इस अर्थ में इन्द्र शब्द से इन्द्रिय बना है। इन्द्र अनादि हैं सदा रहते हैं इसका निरूपण वेद में बहुत हैं। पुनः

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न्यो अभिचाकशीति । ऋ० १।१६४।२०

इस ऋचा से भी जीव का अनादित्व सिद्ध होता है। जो आदमी जीव को अनादि नहीं मानते हैं उनके पक्ष में बहुत दोष हैं। परमेश्वर ने इनको असमान क्यों बनाया। किसी को दुःखी और किसी को सुखी। पुनः अभाव से भाव कैसे हो सकता है। पुनः जब एक नई चीज बनाई तो अच्छा परमात्मा अच्छे पदार्थ बनावे। निकृष्ट और उत्कृष्ट शरीर क्यों। पुनः बुद्धि भी ऐसी ही देता जिससे उसकी शुभकर्म में ही प्रवृत्ति होती। 'पुनः क्यों किसी को मुक्ति मिले और किसी को नहीं' क्योंकि जैसा ईश्वर चाहता है वैसा ही उससे काम करवाता फिर इसमें दोषी कौन ? एवं मनुष्य जीव और पशु इत्यादिक जीव में भेद मानते हैं। पशु आदि में आत्मा मानते ही नहीं। कुरान में वर्णन आता है कि पहले ही से अल्लाह ने कुछ मनुष्यों को नरक के लिये और कुछ मनुष्यों को स्वर्ग के लिये बनाया इत्यादि अनेक बातें अयौक्तिक कही गई हैं। वेद में कर्मानुसार सब विभाग हैं। लोक में भी कर्मानुसार चोर को दण्ड और शिष्ट को पारितोषिक दिये जाते हैं। अतः इस लक्षण पर भी विचार करने से ईश्वरीय ग्रन्थ वेद ही प्रतीत होता है।

८—जिसमें मिथ्या माहात्म्य न हो।

वेद में कही भी चर्चा नहीं है कि ईश्वर के नाम जपने से या किसी विशेष सूक्त के पढ़ने से या केवल ईश्वर पर या ऋषियों के ऊपर विश्वास करने से तुम कृतपापों से छूट जाओगे। इसके अतिरिक्त वेद में किन्हीं मन्दिरों का उल्लेख नहीं जिनके दर्शन से आदमी पापरहित होजाय या तीर्थों का भी वर्णन नहीं जहां यात्रा करने मात्र से मनुष्य अपने को निष्पाप समझने लगता हो। सम्पूर्ण वेद के अध्ययन से भी वह अध्येता लाभ नहीं उठा सकता यदि उसकी आज्ञा के अनुसार वह आचरण नहीं करता और ईश्वरीय विभूतियों को अच्छी तरह नहीं जानता।

यथा—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
यस्मिन् देवा अधि विश्वेनिषेदुः
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति
य इत्तद्विदुस्त इमे समासते। ऋ० १।१६४।३९

तथा वेदों में पापों से छूटने की प्रार्थनाएं आती हैं किन्तु उन प्रार्थनाओं के करने से वे ऋषि या कोई कृतपाप से छूट गए हैं या छूटते हैं वैसा कहीं वर्णन नहीं। क्योंकि कृत कर्मों का फल उसे अवश्य भोगना ही होगा।

पाप वाचक शब्द

वैदिक पापवाचक शब्द ही दिखला रहे हैं कि कृतपापों से कर्ता कदापि छुटकारा नहीं पा सकता जैसे पाप के नामों में से एक नाम "किल्विष" है अर्थात् किल्=कुत्सित विष जो बहुत बुरा विष हो। जैसे विष के खाने से उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है। वैसेही दुष्कर्म करने का फल वह कर्ता अवश्य पावेगा। दूसरा नाम अंहस् है अर्थात् अच्छे प्रकार आघात करनेवाला। इसमें सन्देह नहीं कि कृत पाप बुरी तरह से आदमी को बीधता है जिसके वेध से कर्ता को बचना कठिन है। तीसरा नाम "दुरित" है जिसका आगमन दुःखजनक हो। इस प्रकार प्रत्येक पापवाची शब्द बतला रहा है कि कृतपाप का फल अवश्य भोगेगा। परन्तु आश्चर्य की बात है कि केवल ईसा के ऊपर विश्वास या राम २ कहने मात्र से पाप से छूट जाता है। ऐसा वर्णन अन्यत्र विद्यमान है॥

६—"जो ग्रन्थ लौकिक विज्ञान से विरुद्ध न हो

इस लक्षण का तो सर्वथा सबही सम्प्रदायी पुस्तकों में अभाव ही है। मुझे बड़ा आश्चर्य्य लगता है कि जो ग्रन्थ प्रत्यक्ष ज्ञान से विरुद्ध हो वह ईश्वरीय कैसे कहा सकता है। ईश्वरीय क्या विद्वत्प्रणीत भी वह कहलाने योग्य नहीं।

हो सकता। इसी से मालूम होता है कि वेद को छोड़ भूमि पर कोई ग्रन्थ ईश्वरीय नहीं।

१—लौकिक विज्ञान, प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा सिद्ध करता है कि अन्यान्य चन्द्र शुक्र बृहस्पति प्रभृति ग्रह के समान यह पृथिवी भी दौड़ रही है। सूर्य्यके चारो तरफ घूम रही है और यह गोल है इत्यादि। इसके अनुकूल कोई भी धर्म ग्रन्थ नहीं किन्तु वेद भगवान् इसके अनुकूल हैं। यथा—

"कतरा पूर्वा कतरा परायोः कथा जाते कवयः कोवि वेद। विश्वंत्मना विभृतो यद्ध नाम वि वर्तेते अहनी चक्रियेव। ऋ० १।१८५।१

इस ऋचा से केवल पृथिवी ही का नहीं किन्तु समस्त नक्षत्रराशि का नियमबद्ध होकर घूमना सिद्ध होता है और ऊपर नीचे पूर्व पश्चिम आदि व्यवहार मात्र के लिये कल्पित है वास्तविक नहीं यह भी इस से जाना जाता है।

पुनः यह पृथिवी सूर्य्य के चारो तरफ घूमती है इसमें यह ऋचा प्रमाण है—

अहस्ता यदपदी वर्धत क्षाः शचीभिर्वेद्यानाम्। शुष्णं परि प्रदक्षिणित् विश्वायवे नि शिश्नथः॥

ऋ० १०। २२। १४

पुनः सूर्य्य अपनी आकर्षण शक्ति से पृथिवी को चारो तरफ घुमा रहा है इसमें यह ऋचा प्रमाण है—

सविता यन्त्रैः पृथिवी मरम्णादस्कम्भने सविता द्यामदृहंत् । अश्वमिवाधुक्षद् धुनिमन्तरिक्ष मतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम् । ऋ० १०।१४९।१

इससे भी सिद्ध होता है कि अनेक नक्षत्र इस सूर्य्य के चारों तरफ घूम रहे हैं।

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्। इत्था चन्द्रमसो गृहे । ऋ० १।८४।१५

इस ऋचा के व्याख्यान में यास्काचार्य्य कहते हैं कि—

तदेनोपेक्षितव्यम्—आदित्यतोऽस्यदीप्तिर्भवति

पुन—

सोमोवधूयुरभवदश्विनास्ता मुभावरा । सूर्य्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात् ।ऋ०१०।८५।९

इससे भी यही सिद्ध होता है कि सूर्य्य से ही चन्द्र प्रकाशित है। ऐसे २ अनेक ऋचाएं वेद में हैं।

ग्रहण की चर्चा

३—ग्रहण की भी चर्चा वेद में आती है। पृथिवी की छाया से चन्द्र ग्रहण और चन्द्र की छाया से सूर्य्य ग्रहण होता है- इस विषय के प्रमाण में ये ऋचाएं हैं यथा—

यत्त्वा सूर्य्यं स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुरः अक्षेत्रविद् यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः । ऋ०५।४०।५

यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुरः अत्र-यस्तमन्वविन्दन्नह्यन्ये अशक्नुवन् ॥ ऋ० ५।४०।६

"आकर्षणशक्ति"

८—आकर्षणशक्ति का भी विवरण वेद में पाया जाता है—

यथा—

आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यंञ्च । हिरण्ययेन सविता रथेना देवोयाति भुवनानि पश्यत् ॥ ऋ० १।१३५।२

अतएव वेद में सूर्यका एक नाम ही कृष्ण आया है क्योंकि वह अपनी ओर पृथिवी आदि भुवनों को खैंचे हुए स्थित है यथा—

कृष्ण नियानं हरयः सुपर्णा अपोवसाना दिवमुत्पतन्ति । त आववृत्रन्त् सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥ ऋ० १।१६४।४७

वेद में सूर्य्य का एक और नाम **विचर्षणि** आता है। कृष धातु से चर्षणि शब्द सिद्ध होता है। कृष धातु का अर्थ प्रायः आकर्षण होता है । इसी से आकर्षण आकृष्टि और कृष्ण आदि अनेक शब्द बनते हैं। ऋचा यह है—

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावा पृथिवी अन्तरीयते । अपामीवां बाधते वेति सूर्य्य-मभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥ ऋ० १।३५।९

पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुव-नानि विश्वा । तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सना देव न शीर्यते सनाभिः । ऋ० १।१६४।१३

इस एक ऋचा से कई वस्तु सिद्ध होती है।

१—भुवनानि विश्वा—सम्पूर्ण भुवन सूर्य्य के रथ पर स्थित है। यह सिद्ध करता है कि पृथिव्यादि लोकों से यह सूर्य्य बहुत बड़ा है।

२—भूरिभारः—इससे आकर्षण सिद्ध होता है

३—सनाभिः—बन्धनार्थक णह धातु से नाभि बनता है। जैसे इस मानव शरीर का नाभि सम्पूर्ण शरीर का बान्धनेवाला एक प्रकार से है वैसे ही यह सूर्य्य पृथिवी आदि लोकलोकान्तरों को बान्धने वाला है। यह अपनी आकर्षणशक्ति से ही अपने परितः स्थित लोकों को खेंचकर यथायास्थित है पुनः—

व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवी-मभितो मयूखैः । ऋ० ७।९९।३

रोदसी यह नाम द्यावापृथिवी दोनों का है इस कारण यहां द्विवचन है। जो रोकनेवाली हों वे रोदसी। प्रथम "रोदसी" कहने से सिद्ध है कि यह पृथिवी और इसके अतिरिक्त अन्यान्य लोक भी रोदसी है अर्थात् अपनी ओर आकर्षण करनेवाली है।
इसी के अनुसार भास्करीय ग्रन्थों में यह श्लोक आता है—

आकृष्टशक्तिश्च मही तयायत्
स्वस्थं गुरु स्वाभिमुखी करोति।
आकृष्यते तत् पततीव भाति
समे समन्तात् कुरियं प्रतीतिः॥

वैदिक भाषा में एक और भी विचित्रता है कि वस्तुओं के नामही ऐसे रक्खे गए हैं जिनसे उनके स्वभाव और स्थिति बीजरूप से प्रतीत होती है।

"जगत् और संसार शब्द"

ये दोनों शब्द ही प्रकाशित करते हैं कि प्रत्येक पदार्थ स्वरूप से चलायमान हैं। पुनः पुनः बारम्बारं गच्छतीति जगत्=जो सर्वदा गति में है उसे जगत् कहते हैं। तथा **संसरतीति** संसारः जो अच्छे प्रकार चल रहा है वह संसार। एक साधारण से साधारण बुद्धिवाला भी अनुमान

कर सकता है कि पृथिवी पर से चन्द्र नक्षत्र राशि चलने दीखते हैं वैसेही अन्यलोकस्थ प्राणियों को पृथिवी चलती दीखती होगी और जब आकाशस्थ बड़े से बड़े नक्षत्र गतिमान् हैं तब यह भूमि गतिमती क्यों नहीं। पुनः—

बिना आधार के भ्रमण करते हुए अनन्त नक्षत्र राशि अपने २ स्थान में विद्यमान है तो यह पृथिवी इस प्रकार की क्यों नहीं अतएव पृथिवी के नामों में से एक नाम हो गौ है 'गच्छतीति गौः' जो चलता है उसे गौ कहते हैं इत्यादि अनेक विज्ञान इसमें हैं। अतः यही वेद ईश्वरीय पुस्तक है।

१०-जिसमें ईश्वरीय कार्य्यों के उपलक्ष में उत्सव, पर्व पूजा आदि का विधान हो।

इस लक्षण के ऊपर भी विचार करने से वेद ही ईश्वरीय ग्रन्थ प्रतीत होता है क्योंकि इसमें ईश्वरीय कार्य्यों के महात्म्य के बढ़ाने और उन्हें जानने के लिये ही बड़े २ यज्ञों का विधान किया गया है।

१—प्रथम प्रत्येक मास में यज्ञ करने के लिये दर्शेष्टि और पूर्णमासेष्टि का विधान है। अमावस्या तिथि में प्राकृत आश्चर्य्य घटना होती है। उस तिथि में चन्द्रमा किंचिन्मात्र भी नहीं दीखता। इसके विरुद्ध पूर्णिमा तिथि में सम्पूर्ण चन्द्र दृश्य होता है। पुनः उसी दिन से घटने लगता है। यह ईश्वरीय विचित्र प्रबन्ध की बात है और प्रत्येक मनुष्यको चन्द्रके क्षय और वृद्धिका कारण जानना

है अतः वेदमें इन दोनों तिथियों पर विशेषरूपसे पूजा पाठ की विधि है। इसी प्रकार चतुर्मासेष्टि यज्ञ का इसलिये विधान है कि वर्षा ऋतु भी एक प्राकृत अपूर्व घटना है। इतने मेघ कहां से आजाते हैं, किस प्रकार समुद्र से वाष्प होकर मेघ उठते हैं, इन मासों में इतने वाष्प क्यों होते, किसी देश में न्यून और किसी देश में अधिक वृष्टि क्यों होती इत्यादि वर्षा सम्बन्धी अनेक विषय प्रत्येक मनुष्य को विज्ञातव्य हैं।

ज्योतिषामयन, गवामयन, आङ्गिरसनामयन अश्वमेध इत्यादि महान् यज्ञ इसलिए किये जाते हैं कि सौरवर्ष और चन्द्र वर्ष में क्योंकर भेद हो जाता है पुनः दोनों की एक रूप में व्यवस्था कैसे हो सकती है। ऋतु परिवर्तन कैसे होता और ऋतु का विभाग किस तिथि से आरम्भ होकर किस तिथि पर समाप्त करना चाहिये एवं सौरमास की गणना और पूर्ति किस रीति पर होनी चाहिये। इत्यादि वर्ष सम्बन्धी विज्ञान के हेतु ये ज्योतिषामयन आदि तीनों यज्ञ किये जाते हैं और वर्षान्त्य दिवस उत्सव मनाया जाता है इसी प्रकार अग्निष्टोम आदि यज्ञों का विधान है।

आर्य्यों के प्रात्यहिक क्रियाओं पर ध्यान देने से भी यही बात प्रतीत होती है। जैसे सन्ध्योपासन। यद्यपि परमात्मा की उपासना जब चाहे तब कर सकता है तथापि प्रातः और

सायंकाल प्राकृत विचित्र घटनाएं होती हैं। प्रातः और सायं-काल में कितने परिवर्तन होते हैं आप लोग प्रति दिन अनु-भव करते ही हैं। एक तरफ समस्त नक्षत्र राशियों का अस्त होना दूसरी ओर सूर्य्य का उदित होना। अन्धकार का विनाश और ज्योति का प्रकाश। मनुष्य जाति के लिये शयन का परित्याग और दूसरी ओर जीवन का आरम्भ। प्रातः काल होते ही कुछ जन्तुओं को छोड सबही प्राणी जाग जाते हैं और अपनी २ बोलियों से रात्रि की सन्नाहटों को तोड़ डालते हैं। जो समय एक प्रलय सा महा भय का कारण चोर डाकू लम्पटों का महा सहायक बनाया वही अब सृष्टि का, आनन्द का और साधुजनों का अपना होगया। थोड़ी ही देर की निशीथ में कितनी घबराहट और कितनी निःशब्दता छागई थी। प्रभात होते ही वे सब आपत्तियां जाती रहीं। इत्यादि शतशः परिवर्तन के साथ जो प्रातःकाल होता है उस समय में वैदिक सन्ध्या का विधान है। इसी प्रकार सायं-काल में। ये दोनों ही काल ईश्वरीय प्रबन्ध की आह्लादजनक लीलाएं दिखला रहे हैं। इसमें ईश्वरोपासन करने से चित्त अति प्रसन्न होता है।

अग्निहोत्रादिक कर्म भी ईश्वरीय विभूतियों के प्रदर्शक हैं। प्रातः और सायंकाल वैदिक गण स्वाहा शब्द द्वारा अपने सर्वस्व का त्याग लोकोपकारार्थ करते हैं। चारों ओर सुगन्धिमय द्रव्य फैल जाते हैं। लोगों का चित्त प्रसन्न हो

जाता है। इसके अतिरिक्त उपासक जन मानो प्रति दिन अपने अभिमान और क्रोधादिक दुर्गुणों को अग्नि में भस्म किया करते हैं इत्यादि अग्निहोत्र के लाभ पर विचार करने से मालूम होगा कि ये सब कर्म ईश्वरीय विभूतिप्रदर्शक है।

अश्वमेध।

बहुत आदमी कहते हैं कि अश्वमेध गोमेध और नरमेध आदि याग का विधान जिसमें हो वह ईश्वरीय कैसे, और उन यागों में पशु प्रभृतियों का वध होता था इसमें सन्देह नहीं क्योंकि इस समय में भी काली दुर्गा के नाम पर सहस्रशः पशु मारे जाते हैं। गङ्गा आदि नदियों और कई एक धर्म स्थानों में नर बलिदान भी प्रचलित ही था जिसको इंगलिश गवर्नमेण्ट ने बलात्कार रोका है इत्यादि आक्षेपों के कारण अश्वमेध यज्ञ का यहां संक्षिप्त विवरण दिखलाना परमावश्यक है। अश्वमेध यज्ञ का वैदिक तात्पर्य इस प्रकार है। वैदिक भाषा में अश्व नाम प्राणों और इन्द्रियों का है। यथा "इन्द्रियाणि हयानाहुः।" मेध नाम संगम का है। प्रत्येक जीव में प्राणों और इन्द्रियों का सङ्गम-संयोग-किस प्रकार हुआ है और उसके संयोगसे प्राणियों की कितनी वृद्धि हुई और मनुष्य में इन्द्रियसंख्या और प्राणसंख्या तुल्य रहने पर भी तथा एक ही वंश में अथवा अति समीपी सम्बन्ध में भी इतना भेद क्योंकर हो जाता है। एक आदमी की बुद्धि सद्व्यवहार की ओर और दूसरे की असत्यता में जा

गिरती है। कोई वीरता को, कोई विद्याध्यवसाय को और कोई धन संचय को पसंद करने लगता है इसका क्या कारण है? एवं तत् तद् व्यवहार करने से मानव हृदय में तथा मुखों के ऊपर क्या २ परिवर्तन होते हैं इत्यादि विज्ञान के हेतु अश्वमेध यज्ञ किया जाता था। वैदिक क्रिया के ऊपर ध्यान देने से यही अर्थ विस्पष्ट होता है। मैं अति संक्षेप से इसको दो एक बात यहां दिखलाता हूं।

यजुर्वेद ३० वें अध्याय के आज्ञानुसार १७२ प्रकार के व्यवसायी तथा चोर डाकू आदि मनुष्य इस यज्ञ में सञ्चित किए जाते हैं इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के मनुष्य हों तो इसमें उन्हें भी सम्मिलित कर लेना चाहिये। उनमें से कुछ नाम ये हैं:—

ब्राह्मण, राजन्य, वैश्य, शूद्र, तस्कर, वीरहा, क्लीव, अयोगू, पुंश्चलू, मागध, सूत, शैलूष, सभाचर, भीमल, रेभ, कारि, स्त्रीषश्व, कुमारी पुत्र, रथकार, तक्षा, कौलाल, कर्मार, मणिकार, वप इत्यादि।

प्रिय पाठको! इस एक विवरण से आप समझ सकते हैं कि हत्या के लिये यह यज्ञ नहीं था। क्या ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि १७२ प्रकार के मनुष्य इस में मारे जाते थे और इससे होम किया जाता था। कदापि नहीं, यह एक प्रकार की प्रदर्शनी थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदिकों के स्वभाव से प्रजाओं को परिचित होनेके वास्ते यह प्रदर्शनी की जाती थी।

क्या मच्छर, मेढक, चींटी और सिंह आदि भी बलि के लिये ही संगृहीत होते थे। यह वर्णन भी सिद्ध कर रहा है कि यह यज्ञ प्रदर्शनी मात्र थी।

इसके अतिरिक्त इसमें दस दिन लगातार सभा होती थी जिसमें प्राणियों के स्वभाव, वंश कर्तव्याकर्तव्यों का उपदेश किया जाता था। शतपथ ब्राह्मण में इसका विस्तार से वर्णन आता है। पुनः—

व्रीहयश्चमे यवाश्चमे माषाश्चमे।

तिलाश्चमे मुद्गाश्चमे खल्वाश्चमे। प्रियङ्गवश्चमे…

गोधूमाश्चमे। मसूराश्चमे इत्यादि यजुः १८।१२

धान, जौ, उर्द, मूंग, चने, कौनो, चीन, कोदो इत्यादि अन्न तथा—

अश्माचमे—विविध प्रकार के पत्थर, मिट्टी लोहा सीसा आदि धातु इकट्ठे किये जाते थे इत्यादि वर्णन से विस्पष्ट होता है कि अश्वमेध यज्ञ प्रदर्शनी थी।

पुनः जलचर, स्थलचर, नभश्चर के पशु पक्षी जितने प्राप्त हो सकते हैं वे सब ही एकत्रित किए जाते थे। वेद में उनके बहुत नाम गिना दिए गए हैं। इनको जीते हुए किस प्रकार रखना चाहिये उसके उपाय का भी पिछले ग्रन्थ में लेख आया है यथा—

"नाडीषु प्लुषिमशकान्, करण्डेषु सर्पान्, पञ्ज-रेषु मृगव्याघ्रसिंहान्। कुम्भेषु मकरमत्स्यमण्डू-

कान्। जालेषु पक्षिणः। करासु हस्तिनः। नौषु चौदकानि यथार्थमितरानिति।

नाडी=एक प्रकार की तृणों से बनी हुई पेटियों में छोटी छोटी चींटी से लेकर मशक पर्य्यन्त प्राणी रक्खे जांय। करण्ड=एक प्रकार की सापों के रखने के लिये पेटियां। उनमें सांप रक्खे जांय। पींजड़े में मृग, व्याघ्र, सिंह आदि। घड़ों में मकर मछली मेढक आदि। जाल में पक्षी गण। कराओं में हाथी। नौकाओं में जलचर जन्तु। अर्थात् जिस तरह जिसकी सुविधा हो उस २ उपाय से उन २ जन्तुओं को यज्ञ में अवश्य रक्खें।

इसी प्रकार अन्यान्य सब मेध आदिक यज्ञ है सम्पूर्ण वैदिक क्रियाएं ईश्वरीय विभूति का दिखलाते हैं।

अन्यान्य ग्रन्थों में मनुष्यों का ही अधिक वर्णन है। यदि बायबल से ईसामसीह और कुरान से मुहम्मद साहिब निकाल दिए जांय तो दोनों ग्रन्थ बेकार होजाते हैं परन्तु वेद में ऐसी बात नहीं। बायबल आदि में सब उत्सव ईसा और मुहम्मद साहिब के नाम पर मनाये जाते हैं।

इत्यादि अनेक कारणवश वेद को ही ईश्वरीय कह सकते हैं या यों कहिये कि वेद ही सत्य ग्रन्थ है।

इति।

अर्जुन प्रेस, कबीरचौरा काशी में मुद्रित।